International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 02-01-2021, Accepted: 18-01-2022, Published: 03-02-2022
Volume 4, Issue 1, 2022, Page No. 1-5

भारतीय चित्रकला–इतिहास एवं परम्पराः एक अध्ययन

कुमार रत्नम[1], अंजली रत्नम[2]
[1] प्रोफेसर, सदस्य सचिव, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, शिक्षा मंत्रालय, दिल्ली, भारत
[2] शिक्षा संकाय, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, गौतम बुद्धनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भारतीय चित्रकला साहित्य में चित्रकला के संम्बन्ध में जितना सुस्पष्ट, सुबोध और विस्तृत वर्णन चित्रसूत्रम में मिलता है, उतना किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं है। ग्रन्थकार ने यह स्पष्ट बतलाया है कि चित्रकार का काम आसान नहीं है। इसके लिए प्रतिभा साधना और निष्ठा की नितान्त आवश्यकता है। यह कार्य बहुत एवं अति ही गंभीर है। चित्रसूत्रकार ने चित्र में सादृश्य दिखाना ही चित्र की सबसे बडी विशेषता माना है– *''चित्रे सादृश्यकरणं प्रधानं परिकीर्तितम्''*। चित्रकला का समस्त रहस्य खोलते हुए चित्रसूत्रकार कहते हैं कि अच्छे चित्र वहीं हैं जिसमें माधुर्य ओज, सजीवता और जीवित प्राणियों की भांति चेतना हो, वही चित्र शोभन कहे जा सकते हैं।
विष्णुधर्मोत्तरपुराण का परिशिष्ट 'चित्रसूत्र' भरतीय परम्परागत चित्रण–विधा पर एक श्रेष्ठ व्याख्यान है। चित्रकार, चित्रण–प्रक्रिया, चित्रण–तकनीकी, चित्रण–विधि, आकृति–निरूपण, चित्र के महत्वपूर्ण अंग, चित्र के दोष और गुण, चित्रण के लिए तैयारी, चित्र के प्रकार, भित्ती तैयार करना, रेखा विभिन्न प्रयोग, रंगों का बनाना और उनका प्रयोग करना और चित्र को नृत्य के समान बतलाकर अभिनय–प्रक्रिया के माध्यम से रस–निष्पत्ति तक सिद्धि प्राप्त करने की पूरी योजना प्राप्त हो जाती है। भारतीय चित्रकला के परम्परागत चित्रण–विधान और उसकी तकनीकी के विशय में चित्रसूत्र में वर्णित व्याख्यान न केवल महत्वपूर्ण हैं, वरन् वे स्वतः सिद्ध सैद्धान्तिक अवधारणों हैं, जिनकी पुष्टि परम्परागत भारतीय चित्रकला की विभिन्न शैलियों– अजन्ता शैली, राजस्थानी शैली, मुगल शैली और पहाड़ी–शैलियों में बड़ी ही सरलता से की जा सकती है।

मूल शब्दः चित्रकला, चित्रसूत्र, शैली, चित्रित, चित्रलिपि

प्रस्तावना

जब से मानव ने पृथ्वी पर जन्म लिया, कला का भी तभी से उदय हुआ होगा। उदाहरणस्वरूप आज ऐसे चित्र गुफाओं में देखने का मिलते हैं, जिनसे मानव के क्रिया–कलापों का इतिहास जाना जा सकता हैं। मानव सौन्दर्य का जन्म से ही पुजारी रहा है। सौन्दर्य अनुभूति को पाकर ही मानव–विकास के साथ–साथ कला का भी विकास माना जाता है। इस प्रकार के चित्र भारतीय गुफाओं में प्राप्त होते हैं। फलस्वरूप सिन्धु घाटी की सभ्यता की पूर्व वेला क्या थी, यह जानना कठिन नहीं है। सिन्धु घाटी की सभ्यता के बाद अनेक गुफाओं में चित्र बने, इनमें से कुछ गुफायें आज प्रकाश में आयीं। इस समय भारतीय संस्कृति का पूर्णरूप से विकास हो चुका था। अजन्ता की गुफाओं का ऐसे ही निर्माण हुआ। भारतीय सभ्यता के साथ–साथ कला का विकास भी उसमें प्रतिबिम्बित दिखायी पड़ता है।
कला के दृष्टिकोण से भारतीय चित्रकला का प्रमुख स्थान है। यहां पर वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला तीनों का संगम देखने को मिलता है। अजन्ता गुफाओं के प्रथम साक्षात्कार के समय हुई अनुभूति वर्णनातीत है। प्रथम में मैने स्वयं को भी इस स्थान पर मन्त्रमुग्ध पाया। यहां का सौन्दर्य अपनी उत्कृष्टता में केवल अनुभूति का ही विषय है यहॉ प्राचीन षैली के अवशेष का ही एकमात्र आधार है, जिसमें कला सम्बन्धी सिद्धान्त तथा आदर्ष प्राप्त होते हैं। किन्तु इन सिद्धान्तों एवं आदर्षों से बिल्कुल बध जाने पर कला के सृजन में गतिरोध उत्पन्न हो सकता है। अपेक्षित यह है कि कलाकार परम्पर का उचित ज्ञान प्राप्त की अपनी दृष्टि, अनुभव, उद्योग, चिन्तन, मनन एवं रचनात्मक अभ्यास के बल पर अपने चित्रण में विकास की सृजनात्मक नवीन सम्भावनायें प्रतिष्ठित करें।
आदिम युग से चित्र बनते और बिगड़ते रहे हैं, लेकिन कला सरिता सदैव ही पत्थरों को तोड़ती–फोड़ती दुर्गम मार्गों से अबाध गति से बहती चला आ रही है। न जाने कितनी तूलिकाओं के स्पर्श, छेनियों की चोटें और घुंघरूओं की झंकारें झनझना उठीं और कहीं शून्य में सो गयी। किन्तु वे अपने पदचिन्ह, अपनी छाया और अी प्रतिध्वनि छोड़ गयीं, जो आज भी हमारे सामने एक समोन्नत कला के रूप में विद्यमान है। कोई भी लेखनी कला का इतिहास लिखने में समर्थ नहीं है, केवल श्री मार्कण्डेय मुनि ने ही इसके स्वरूप को निश्चित किया है।[1] कोई भी व्यक्ति सुदूर अतीत में झॉककर देखने की दृष्टि नहीं रखता। आज जो कुछ भी लिखा जा रहा है, वह मात्र उन अवशिष्ट स्मृति चिन्हों, टूटे खण्डहरों, धुमिल रेखाओं और बचे हुए रंगों के धब्बों का सहारा लेकर ही अपनी अपनी बुद्धि की सीमा के सहारे लिखा जा रहा है।[2]
अपने को महान कहने वाला कोई भी इतिहासकार इस काल का दावा नहीं कर सकता कि उसकी लेखनी ने जो कुछ भी लिखा है, वही लक्ष्य है।[3] क्योंकि भौगोलिक परिवर्तन, समय के थपेड़े, संस्कृतियों के आदान–प्रदान, एक देश के दूसरे देश पर आक्रमण और वस्तुओं की छीना झपटी इतनी अधिक हुई है कि उनके बीच में कुछ भी सुरक्षित नहीं बचा, निजी नहीं बचा। जैसाकि आज भी हम देखते हैं कि धन के लोभी अपने देश की कला को विदेशों के हाथों बेचने में तनिक भी संकोच नहीं करते हैं।[4] आज जो काम तस्कर कर रहे हैं, वही काम एक देश ने अपने अहम् की तुष्टि के लिए और अपने

धर्म के दम्भ को पोषित करने के लिए दूसरे देशों पर आक्रमण करके किया, अथवा प्रचारकों के साथ अपने देश की कला–कृतियॉ बाहर भेजीं। समय परिवर्तन के साथ अथवा प्राकृतिक प्रकोपों के कारण वही कला की सामग्री भूमिस्थ हो गयी और बाद की समुदायों को प्राप्त वही सामग्री उस देश का इतिहास बन गयी।

कहने का तात्पर्य यही है कि इस भूमण्डल पर सब कुछ समय के चक्र के साथ धूमता रहता है। सभ्यता, संस्कृति और इतिहास के स्रोत इतने धुलमिल गये हैं कि उनके कारण इतिहास को स्पष्ट करने में अथवा लिखने में एक उलंझाव पैदा हो गया है। फिर भी मूलरूप से कुछ ऐसी चीजें भी है, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं ले जाई जा सकतीं, जैसे– आदिम मानव के गूफाचित्र आदि, जो देश–विदेश के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। भारत में भी संसार के सम्य देशें की भॉति ये गूफायें पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं।[5] हरनीहरन, सिंहनपुर, मिर्जापुर, मनिकापुर, पॅचमंढी, होशंगाबाद आदि ऐसी ही गुफायें हैं, जो भारत की प्रागेतिहासिक चित्रकला के इतिहास को अपने मे संजोये हुए हैं।[6]

भौगोलिक परिस्थितियां जो अचल होती हैं, उनका भी देश की सम्यता और संस्कृति पर विशेष प्रभाव पड़ता है। भारत में हिमालय पर्वत ओर गंगा–यमुना के बीच का मैदान और इनके बीच में पनपी पली संस्कृति सभ्य देशों से भिन्न है । जिन पर इन भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव है, ऐसी वस्तुओं के आधार पर जो इतिहास लिखा जाता है, उसके प्रामाणिक होने की सम्भावना अधिक है। प्रागैतिहासिक काल के चित्र इस बात का प्रमाण हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क में सौंदर्यानुभुति के अंकुर जन्मजात होते हैं, जिन्हें किसी भी सीमा तक विकसित किया जा सकता है। आदिम काल से लेकर आज तक की विकसित कला उपरोक्त कथन की पुष्टि करती है। भारतीय चित्रकला की यात्रा उन आदिम गुफाओं से प्रारम्भ होकर आज के कलाकार के व्यक्तिगत विकसित स्टूडियों तक की यात्रा है, जिसमें उनके उत्थान और पतन के इतिहास समाहहित हैं।

प्रागैतिहासिक युग के जो थोड़े से मानव ढांचों, खोपड़ियों और शिलाखण्डों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं, उनके अध्ययन से प्राणि जगत का इतिहास इतने पींछे चला जाता है कि जिसकों सुनकर या पढ़कर स्वभवतया मनुष्य की चित्रकला अभिरूचि की अति प्राचीनता स्पष्ट हो जाती है। विन्ध्य पहाड़ियों की उपलब्ध मानव अस्थियां, मध्यप्रदेश के सिंहनपुर और सरगुजा रियासत में स्थित जोगीमारा स्थानों से प्राप्त चित्रयुक्त प्राचीन महत्व की अनेक चट्टानें, तमिलनाडु, आन्ध्र, छोटा नागपुर, उड़ीसा, व होषंगाबाद, पंजाब, उत्तरप्रदेश और नर्मदा उपस्यका आदि विभिन्न स्थानों से उपलब्ध वस्त्रों, पाशाण चित्रों, मृत्तिका पात्रों, लाल–पीले रंग से पेंट किया हुए रेंगते कीड़ों, पषुवों, पक्षियों, मनुष्यों और सुअरों आदि की आकृतियों का अध्ययन कर प्रागैतिहासिक भारत के चित्रकला प्रेम का सहज ही में पता लग जाता है।[7] प्रागैतिहासिक चित्रकला अवशेषों की गवेशणा करते हुए पुरातत्वज्ञ विद्वानों का मत है कि आज की ही भॉति आदि मानव भी सौन्दर्य का उपासक था। सौन्दर्य दर्शन की इस उत्कट भावन ने ही उसको अपने अमूर्त भावों को मूर्त रूप में चित्रित करने के लिए बाध्य किया। जिस प्रकार उसने अपनी हार जीतों के संस्मरण रेखाओं में चित्रित किये, इसके प्रमाण हमें मोहनजोदरो और हरप्पा की खुदाइयों से उपलब्ध सामग्री में देखने को मिलते हैं।[8] मानव सभ्यता के उषाकाल में, जबकि भाषा और लिपि का अविर्भाव नहीं हुआ था, भावाभिव्यंजना तथा विचारों के पारस्परिक आदान प्रदान का माध्यम भी चित्रकला ही रही है।

सभ्यता के विकास चिन्ह हमें रज्जू या ग्रन्थलिपि, भाव प्रकाशनलिपि, ध्वनिप्रकाशन चित्रलिपि ओर व्यंजनमूलक लिपि में देखने को मिलते हैं। चित्र रचना पिक्चर कम्पोजीशन के द्वारा विचार प्रकाशन की यह पद्धति इतनी विकसित हुई कि धरती का कोई भी मानव समाज इसके प्रभाव से अछूता न रह सका। ये चित्र शिलाओं, वृक्ष की छालों, जीव जन्तुओं के चर्मों, हड्डियों, सींगों और दांतों आदि अनेक प्रकार की सामग्री पर चित्रित किये गये हैं।[9] इस प्रकार के अनेक चित्र कैलिफोर्नियां की घाटियों, स्काटलैंड की शिलाओं, ओहियो रियासत की वृक्ष छालों, लैपलैण्ड के ढोलों और जोवर्न फ्रांस में सींगों पर उत्कीर्णित आज भी उपलब्ध होते हैं। एक सम्पूर्ण घटनाचक्र को चित्रों में प्रकाशित करने की प्रथा अमेरिका के आदिवासियों में भी प्रचलित थी।[10] पृथक पृथक वस्तुओं के लिए भावबोधन के चित्र संकेत आइडियोग्राफ मैक्सिको तथा मिस्र के आदिवासियों में भी प्रचलित थे।[11] हडप्पा और मोहनजोदरो के उपलब्ध बर्तनों, दफनाये गये शवों के साथ के पात्रों, मिट्टी के वर्तनों, पत्थरों, कांस्यमूर्तियों, मुद्राओं और टिकटों पर की गयी चित्रकारी अलंकरण आदि की सामग्री में प्राचीन भारत की कला अभिरूचि प्रचुरता से व्याप्त है।[12] प्रेमीजनों की हृदयाकर्षक भाव–भंगिमायें, नर्तकियों की प्रवीण मुद्रायें, केश श्रृंगार, अंग – प्रत्यंगों का आकर्शक उभार – सभी में एक विचित्र भाव दिखलाई देता है। वहां प्रकृति के रसभाव पेशल विभिन्न रूपों में चित्रकला का चरमोत्कर्ष समाया हुआ है। मातृदेवी की प्रतीकात्मक मूर्तियां, शिव, पशुपति और नन्दी बैल आदि की मूर्तियां देखने योग्य हैं। सिंधु सभ्यता की इन उपलब्ध चित्रकला– कृतियों को देखकर प्रतीत होता है कि वहां का जनजीवन कलानुरागी कलाकारों, विद्वानों, योद्धाओं एवं दार्शनिकों आदि की प्रवृत्तियों से युक्त था।

मौर्य साम्राज्य का यशस्वी सम्राट अशोक बौद्धधर्म का सबसे बड़ा आश्रयदाता था। उसके 13वें अभिलेख से प्रतीत होता है कि कलिंग विजय की रक्तरंजित क्रीड़ा ने उसकी राज्य– विजय –लिप्सा को धर्म विजय में परिवर्तित कर दिया था। तभी से वह सम्राट से ''प्रियदर्शी'' बना। उसने बौद्ध संस्कृति, बौद्ध साहित्य और बौद्ध कला के प्रचारार्थ अपने राज्य में तथा विदेशें में अपने दूत भेजे। प्राचीन भारत के विभिन्न अंचलों में अशोक द्वारा निर्मित स्तूपों एवं शैल्यों में चित्रकला का उर्जस्व रूप समाहित है।[13] सारनाथ में अशोक स्तम्भ का सिंह मस्तक और विहार के रामपुरवा में अशोक स्तम्भ का साड़ मस्तक, मौर्ययुगीन कला की शक्ति, गति और गुरता का प्रतीक हैं।[14] मौर्ययुग में लोककला का भी विकास हुआ, जिसके फलस्वरूप यक्ष–यक्षिणियों एवं देवी देवताओं आदि की लोक विश्वास संबंधी मूतियों का भी निर्माण हुआ है। इन मूतियों में सौन्दर्य, शक्ति, भावुकता, विनय और आराधना के विभिन्न भाव प्रदर्शित हैं।[15] कुशाण राज्य के संस्थापक कनिष्क ने भी अषोक के ही आदर्शों को चमकाया।[16] कनिश्क के युग में भारतीय यूनानी चित्रकला का निर्माण हुआ। बौद्धधर्म के इतिहास में जिसे कला क्षेत्र में नयी सम्भावनाओं का प्रतीक[17] और बौद्धधर्म एवम् बौद्ध संस्कारों की नवीन शाखा कहा गया है, उसकी रचना एवं उसका विकास भी कनिष्क के ही राज्यकाल में हुआ। अनेक भव्य स्तूपों और बड़े बड़े नगरो की रचना उसके कलाप्रेम और निमार्ण कार्यों की परिचायक है। उसकी राजधानी पुरूषपुर पेशावर में उसने अग्शितान नामक एक ग्रीक शिल्पी से एक अनुपम कलापूर्ण काष्ठस्तम्भ निर्मित करवाया था। उसने कनिष्कपुर कानिसपोर में एक नया भव्य नगर भी बसाया था। अनेक बौद्ध विहारों का निर्माण का श्रेय भी उसको प्राप्त है। उससे पहले प्राचीन बौद्धकला में तथागत की

कोई भी मूर्ति उत्कीर्णित नहीं थी। उसके धार्मिक सुधारों के कारण ही तथागत की भव्य प्रतिमायें भी निर्मित होने लग गयी थीं।

गुप्त सम्राट न केवल विद्याप्रेमी, शिक्षाविद और बड़े बड़े कलाकारों के आश्रयदाता ही थे, वरन् वे स्वयं भी साहित्य मर्मज्ञ तथा अनेक कलाओं में निपुण थे।[18] समुद्रगुप्त वीणावादन में सिद्धहस्त था, जिसके प्रतीक उसके सिक्के हैं।[19] वास्तुकला के क्षेत्र में गुप्तयुग बहुत बढ़ा चढा था।[20] झांसी के देवगढ़ मंदिरों और कानपुर के भीतरगांव मंदिरों की भव्य वास्तुकला गुप्तयुग की ही अविस्मरणीय देन है।[21] उक्त दोनों मन्दिरों की दीवारों में बड़ी निपुणता से बैठाई गई मृण्मयी मूर्तियों को देखकर विदित होता है।[22] कि उस युग में वास्तुकला अपनी पुर्णावस्था में थी।[23] भीतरगांव मन्दिर की हजारों ईंटें और पकाई गई मिट्टी की खाने आज भी लखनऊ संग्रहालय में देखने को मिलती हैं।

अजन्ता के जगतप्रसिद्ध कला–वितान के निमार्ण का अधिकांश श्रेय भी गुप्तयुग को ही हैं। गुप्तकालीन कला के भव्य नमुने फ्लोरा, बाघ और यहां तक कि मध्य–एशिया के भित्तिचित्रों में भी देखने को मिलते हैं।[24] तत्कालीन सोने के सिक्कों, मूर्तियों और देवताओं की कलापूर्ण आकृतियों पर भी गुप्तकाल के उत्कृष्ट प्रमाण अंकित हैं।[25] गुप्त युग के सिक्के फिर कभी भी भारत में निर्मित नहीं हुए। जिस प्रकार यूनानी और पम्पयाई कला में स्थूल शारीरिक एवं मांसल सौन्दर्य अपनी चरमावस्था को पहुॅचा, उसी प्रकार गुप्तकाल में अलंकरण सज्जा, मुद्राओं के शास्त्रीय ढंग से चित्रण, आत्मा के आंग्लादपूर्ण सौन्दर्य एवं शान्तिस्य प्रकृति के हर्ष–अमर्थ आदि की अभिव्यक्ति में भारतीय चित्रकला अपनी परिपक्वावस्था में पहुॅचीं।[26] गुप्त सम्राटों ने अनेक स्तूपों, स्तम्भों एवं विशाल देवमन्दिरों पर चित्रकला के भव्य नमूने अंकित करवाये।[27]

भारत में मुगलों का साम्राज्य स्थापित हो जाने के बाद चित्रकला के क्षेत्र में एक नयी दिशा प्रकाश में आयी। मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर एक उच्चाकांक्षी व्यक्ति था।[28] मुगल वंश की प्रारम्भ से ही यह विशेषता रही कि वह गुणज्ञ, विद्यानुरागी और गुणी विद्वानों का आदर करनेवाला वंश था। बाबर ने अपने संस्मरणों में फारसी कला–शैलियों की और विशेषतः कलाकार बिहजाद की आलेखन शैली की बड़ी ही समदृष्टिपूर्ण समीक्षा की है।[29] भारत जाते हुए अपने साहित्य और कलाप्रेम के कारण जिन पुस्तकों को बाबर साथ लाया था, उनमें शाहीनामा की एक सचित्र प्रति भी थी, जो लगभग 200 वर्शों तक उत्तरवर्ती शाही पोथीखानों में सुरक्षित रही और जो बाद में अंग्रेजी द्वारा अपहरित होकर लंदन पहुंची। आज वह एशियाटिक सोसाइटी लंदन की सम्पत्ति है। हुमायूॅ को तो कला–अभिरूचि पुश्तैनी परम्परा से ही मिली थी, लेकिन यह उसका दुर्भाग्य था कि वह अपने शासनकाल में कभी भी चैन से न रह गया। शीरी कलम के मुगल चित्रकार अब्दुस्समद शीराजी और मीर सैयदअली को उसने सम्मानपूर्वक अपने दरबार में आमन्त्रित किया था। वे दोनों बाद में अकबर के दरबार में भी सम्मानपूर्वक कला–सृजन करते रहे।[30] इन दोनों कलाकारों ने ईरानी शैली को भारतीय कला–शैली में ढाल कर चित्रकला के क्षेत्र में नवीन सम्भावनाओं को जन्म दिया।[31] हुमायूं के संबंध में विद्वानों का कथन हे कि युद्ध के सयम मे भी वह चित्रकला की पुस्तकों अपने साथ रखता था।

हुमायूं के बाद उसका बेटा अकबर मुगल शासन का स्वामी नियुक्त हुआ। उसने अपने पिता से अब्दुरसमद और सैयदअली को विरासत में पाया। इन दोनों कलाकारों ने ईरानी आकारों को भारतीय रंगों में संजोकर अकबर की समन्वयवादी विचारधारा को साकार कर दिया। अकबर का चित्रकला प्रेम अबुलफजल की पुस्तक आइने अकबरी में देखने को मिलता है।[32] चित्रकला से नफरत करने वाले लोगों से अकबर को स्वयं भी नफरत थी। अकबर की चित्रकला में हिन्दू और मुसलमान दोनों की जातियों के चित्रकार नियुक्त थे। अकबर के बाद उसके पुत्र जहॉगीर ने मुगल–षासन की बागडोर संभाली।[33] वह सर्वगुणसम्पन्न एक उच्चकोटि का कला पारसी थां। अच्छे अच्छे चित्रों की एलबम तैयार करने का उसे गजब का शौक था।[34] उसके युग के चित्र आज भी भारत के और विदेशों के संग्राहलायों में सुरक्षित हैं। उसके बाद शाहजहॉ व दारा मुगल वंश के शासक हुए। ये भी चित्रकला के प्रति अनुरक्त और कलाकारों के आश्रयदाता रहे।[35] औरंगजेब की कलुशित रीति–नीति ने तो चित्रकला की पूर्वाजित धरोहर को सर्वथा तहस–नहस ही कर डाला।[36]

दसवीं शताब्दी ईसवीं से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी ईसवी तक के पॉच शतकों में अनेक सचिव पोथियों का निमार्ण हुआ, जिनके बंगाल, विहार और नेपाल –तीन प्रमुख केन्द्र थे।[37] नालन्दा और विक्रमशिला आदि तत्कालीन विद्या–निकेतनों मे इस प्रकार की सचित्र पोथियां मुख्यतया लिखी गयीं । इन तीनों केन्द्रों की चित्रषैली प्रायः एक समान ही थी।[38] अठारहवीं शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी के आदि में हिन्दू चित्रकला कई उपशाखाओं में विभाजित होकर अपनी चरमोन्नत अवस्था में पहुॅची।[39] इस युग की प्रमुख चित्रशैलियों के नाम हैं– जयपुर, कांगड़ा, गढ़वाल, नाहन, मण्डी, बसौली, बोड़छा, दतिया, जोधपुर, उदयपुर, गुजरात, महाराश्ट्र और हैदराबाद।[40]

राजस्थानी शैली का अस्तित्व भी मुगल शैली जितना ही प्राचीन है। राजस्थानी चित्रशैली क्योकि हिन्दू जीवन से सम्बन्धित थी,[41] अतएव अपनी रूपसज्जा और भावांकन के लिए उपने अजन्ता की लोकप्रिय शैली को अपनाया। उधर मुगल कला से उसका सगा सम्बन्ध रखने के कारण उसमें श्रृंगार प्रसाधनों की भी अधिकहता रही है।[42] सच तो यह है कि राजस्थानी कलाकारों ने एक ओर तो तुलसी, सूर और मीरा की दिव्य आध्यात्मिक भावनाओं को अपनी तूलिका द्वारा साकार मूर्तिमान कर दिया है, दूसरी ओर केशव, देव और बिहारी पर उनका ध्यान आकर्शित होते ही उद्दाम श्रृंगार की चरमोत्कर्श दशाओं को भी रंग, रूप और वाणी देने में उन्होंने कोई कसर नहीं की।[43] यही उनके सर्वांगीण कला–जीवन की सफलता थी।

पहाड़ी चित्रशैलियों की आवासभूमि हिमालय के विस्तृत भूभाग के जम्मू, टेहरी गढ़वाल, पठानकोट, कुल्लू, चम्बा, कॉग्ला, गुलेर, मण्डी आदि पहाड़ी इलाके हैं।[44] यद्यपि पहाड़ी चित्रशैली का निर्माण सत्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग में हो चुका था, लेकिन अठारहवीं शताब्दी में पहुॅचकर उसने लोकप्रियता प्राप्त की।[45] पहाड़ी शैली के निर्माण में मुगल, काश्मीरी और राजस्थानी–तीनों का ही सहयोग रहा है।[46] उसके मौलिक प्रयोगों, यथार्थवादी दृष्टिकोणों और भावना से पूर्ण अंकनों ने उसकी उपयोगिता को अतिशय रूप से चमकाया है। पहाड़ी शैली के चित्रकारों की अतुलनीय विशेषता यह रही है कि उन्होंने जिस विषय को भी स्पर्श किया, उसमें चार चॉद लगा दिये। दैनिक जीवन से सम्बन्धित छोटे–छोटे प्रसंगों के अतिरिक्त पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं काव्यमय आदि सभी विषयों पर भी पहाड़ी चित्रकारों ने तमाम चित्र बनाये, और वे भी एक से एक उत्कृष्ट।[47] वाल्मीकि व व्यास से लेकर मतिराम और विहारी तक के ग्रन्थों के उन्होंने दृष्टान्त चित्र बनाये। इसीलिए कला–मर्मज्ञों और इतिहासकारों ने अजन्ता की चित्रावली के बाद पहाड़ी शैली को ही भारतीय चित्रकला

के क्षेत्र में ऊँचा स्थान दिया है। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक का समया इन पहाड़ी शैलियों का स्वर्णयुग रहा है।

आधुनिक भारत की चित्रशैलियों पर राजनीति का भी विशेष प्रभाव रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के बाद ब्रिटिश साम्राज्य का पूर्णाधिपत्य हो जाने पर भारत के विभिन्न अंचलों में विदेशी सत्ता के विरोध में जो राष्ट्रीय चेतना ने कवियों, कलाकारों, साहित्यकारों, पत्रकारों और राजनीति के नेताओं को एक सर्वथा नयी दिशा की ओर मोड़ा। इन आरम्भिक कलाकृतियों में जो दुःख, उत्पीड़न, अपमान, घृणा, निराशा ओर विषाद की भावनाओं का प्राबल्य दिखाई देता है, उसका एकमात्र कारण यही राष्ट्रीय जागृति थी। अवनीन्द्र ओर गगनेन्द्र इन टैगोर गुरूओं के अतिरिक्त विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, यामिनिराय एवं सुधीर खास्तगीर आदि ने भी उक्त राष्ट्रीय जागरण को अपनी कलाकृतियों में उतारा है।

संन्दर्भ सूची

1. स्थानहीनं रसं शून्य दृष्टि भला मतम्। चेतना रहितं स्थात्तदषस्तं प्रकीर्तितम् ।। – श्री विष्णुधर्मोत्तरपुराण, चित्रसूत्रः 3/43/20
2. लारेंस बिनयन, एशियाटिक आर्टस – स्कल्पचर एण्ड पेन्टिगं, पेज 6
3. जोवन्ना, जी0 विलियम्स, कलादर्षन पेज 3
4. जी सी एम बर्डबुड दि आर्ट्स ऑफ इण्डिया, पेज 15
5. डा0 कु0 पद्म चौधरी, केशव की रसिकप्रिया की कृतियों का विवेचन, शोधप्रबन्ध, कानपुर वि0वि0 1987, पृ0 136 कानपुर
6. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका , पृ0 132
7. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, श्रीवाचस्पति गैरोला, पृ0 135
8. एच जिमर, दि आर्ट ऑफ इण्डियन एशिया, न्यू यार्क, 1995, पेज 118
9. जी सी एम बर्डबुड दि आर्ट्स ऑफ इण्डिया, पेज 144
10. जोवन्ना, जी0 विलियम्स, कलादर्शन पेज 11
11. सी0 शिवराममूर्ति, सम आस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन कल्चर, न्यू देहली, 1969, पेज 56
12. लारेंस बिनयन, एशियाटिक आर्टस – स्कल्पचर एण्ड पेन्टिगं, पेज 4
13. जी सी एम बर्डबुड दि आर्ट्स ऑफ इण्डिया, पेज 18
14. सुसौल इंटिगटनः दि आर्ट आफ ऐन्शियंट इण्डिया, पेज 137
15. के0 वी0 सौन्दराराजन, इण्डियाज, रिलीजस आर्ट – आइडियाज एण्ड आइडियल्स, पेज 65
16. सी0 शिवराममूर्ति, इथीकल फ्रैगरैंस इन इण्डियन आर्ट एण्ड लिटरेचर, पेज 93
17. सुसौल इंटिगटनः दि आर्ट आफ ऐन्शियंट इण्डिया, पेज 139
18. वही, पेज 231
19. वही, पेज 270
20. बी0 पी0 सिन्हा, आरकियोलाजी एण्ड आर्ट आफ इण्डिया, पेज 41
21. डा0 के0 वी0 सौन्दराराजन, इण्डियाज रिलीजन आर्ट, पेज 20
22. वही, पेज 22
23. कला अंक, सम्मेलन पत्रिक, पृ0 137
24. लारेंस बिनयन, एशियाटिक आर्टस – स्कल्पचर एण्ड पेन्टिगं, पेज 4
25. एच0 डी0 संकालिया, प्रीहिस्टारिका आर्ट इन इण्डिया, पेज 93
26. मारगरेट मैरिक डेनेक, इण्डियन आर्ट, पेज 22
27. प्रो0 रमेश शंकर गुप्ता एण्ड बी0 डी0 महाजनः अजन्ता, फ्लोरा एण्ड औरंगाबाद केब्ज़, पेज 67
28. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, पृ0 139
29. वही, पृ0 137
30. लारेंस बिनयन, एषियाटिक आर्टस – स्कल्पचर एण्ड पेन्टिगं, पेज 62
31. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, पृ0 139
32. डा0 अनीस फारूखी, आर्ट आफ इण्डिया एण्ड परशिया, पेज 7
33. पारसी ब्राउन, पेन्टिंग अंडर मुगल्स, पेज 179
34. आर0पी0 त्रिपाठी, सम आस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, पेज 98
35. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला का इतिहास, पृ0 198
36. डा0 मोतीचन्द्र, दि टेक्नीक्स ऑप मुगल पेन्टिंग, पेज 71
37. कार्ल जे0 खण्डेलवालः इण्डियन पेन्टिंग, पेज 105
38. मारगरेट मैरिक डेनेक, इण्डियन आर्ट, पेज 23
39. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, पृ0 141
40. वही, पृ0 142
41. डब्ल्यू0 जी0 आरचर, इण्डियन मिनिएचर,1926, पेज 79
42. पी0 चन्द्रा, बूंदी पेन्टिंग, न्यू देहली, 1959, पेज 17
43. इम्पीरियल गैजेटियर ऑफ इण्डिया, प्रोविंसियल सीरीज– राजपूताना, कलकत्ता, 1909, पेज 37
44. एन0 सी0 मेहता, स्टडीज इन इण्डियन पेन्टिंग, 1926 पेज 28
45. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, पृ0 143
46. के0 खण्डालयात्रा, पहाड़ी मिनिएटर पेन्टिंग, 1958, पेज 31

47. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, पृ0 143